मुक्तेश्वर स्थान : मिथक, कला एवं पुरावशेष

*शिवकुमार मिश्र**

जिस प्रकार मिथिला की सांस्कृतिक परम्परा विलक्षण है, उसी प्रकार यहाँ के ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक स्थल भी बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। इन स्थलों के गहन सर्वेक्षण तथा अन्वेषण की बड़ी आवश्यकता है। यद्यपि कुछ महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलों की पहचान समय-समय पर विद्वानों के द्वारा होती रही है, किन्तु उनमें से अधिकांश स्थलों की ऐतिहासिकता अस्पष्ट है। नदियों की बहुलता तथा उनकी विनाशकारी धाराओं के कारण इस क्षेत्र के कतिपय पुरातात्विक स्थल विनष्ट हो चुके हैं। दूसरी ओर इस क्षेत्र के पुरातात्विक स्थलों के प्रति पुरातत्ववेत्ताओं में विशेष अभिरूचि भी नहीं रही है, जिससे इनका न तो उत्खनन कार्य हो सका और न ही उसके विषय में कोई विस्तृत जानकारी ही प्राप्त की जा सकी। यही कारण है कि मिथिलांचल का सर्वाधिक विशाल एवं महत्त्वपूर्ण स्थल बलिराजगढ़ की ऐतिहासिकता आज भी बहुत कुछ स्थानीय परम्पराओं, किम्बदन्तियों एवं अन्धविश्वासों पर ही आधारित है।[1]

प्रस्तुत आलेख में मिथिला का एक बड़ा ही महत्त्पूर्ण, किन्तु उपेक्षित ऐतिहासिक स्थल मुक्तेश्वर स्थान की ऐतिहासिकता एवं कला तथा पुरावशेषों पर विचार करना है। यह मधुबनी नगर से पूरब 28 किलोमीटर पर स्थित देवहार गाँव में अवस्थित है। मधुबनी-लौकहा पथ पर 25 किलोमीटर चलने के बाद कमला-बलान नदी के पूर्वी तटबंध से दक्षिण-पूर्व की ओर 3 किलोमीटर की दूरी पर अंधराठाढ़ी प्रखण्ड के अन्तर्गत यह स्थित है। झंझारपुर-लोकहा रेलमार्ग के वाचस्पति नगर स्टेशन से आठ किलोमीटर पश्चिम की ओर चलने पर यह स्थान मिलता है। अंधराठाढ़ी तथा बाबू बरही प्रखण्ड का यह क्षेत्र पुरातात्विक दृष्टिकोण से बड़ा ही धनी क्षेत्र है। मुक्तेश्वर स्थान से करीब सात किलोमीटर पूर्वोत्तर में बलिराजगढ़ है तथा चार किलोमीटर पूर्व-दक्षिण में पस्टन नवटोली नामक गाँव में मुसहरनीयाँ डीह तथा दौराडीह जैसे पुरातात्विक स्थल हैं, जहाँ हाल ही में पुरातत्ववेत्ताओं ने बौद्ध स्तूप होने की बात कही है।[2] अंधराठाढ़ी के इर्द-गिर्द अनेक पुरावशेष प्राप्त हुए हैं, जो वाचस्पति संग्रहालय,

अंधराठाढ़ी में संग्रहीत हैं। इस क्षेत्र में बौद्धधर्म से सम्बन्धित पुरावशेषों का प्राप्त होना एक शुभ लक्षण है, जिसके आधार पर हम पालि साहित्यों में मिथिला संबंधी विवरणों का विस्तृत अध्ययन कर सकते हैं। अंधराठाढ़ी के कमलादित्य स्थान का श्रीधर दास विरचित अभिलेख बड़ा ही प्रसिद्ध है।[3] श्रीधर दास कर्णाटवंशीय राजा गंगदेव के मंत्री थे[4] तथा **सदुक्ति कर्णामृत** नामक ग्रंथ के रचियता थे।[5]

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मिथिला तत्त्व विमर्श में उक्त शिवमंदिर का उल्लेख करते हुए इसे मिथिला के पंजीप्रबन्ध-परम्परा से सम्बद्ध माना है।[6] उनके अनुसार शतधारा गाँव, जो मुक्तेश्वर से एक किलोमीटर पश्चिमोत्तर में अवस्थित है, में गंगौरे मूल के ब्राह्मण हरिनाथ शर्मा रहते थे। महामहोपाध्याय हरिनाथ शर्मा बड़े प्रसिद्ध दार्शनिक एवं स्मृतिसार नामक ग्रंथ के रचियता थे।[7] उनकी पत्नी प्रतिदिन देवहार स्थित मुक्तिनाथ महादेव के दर्शनार्थ जाया करती थी। एक दिन गाँव में अफवाह फैल गई कि एक चाण्डाल ने मन्दिर में जाकर ब्राह्मणी के साथ बलात्कार कर धर्म नष्ट कर दिया है। किन्तु उस स्त्री का कहना था कि वह चाण्डाल गया अवश्य था, लेकिन साँप उसे काट लिया और वह मर गया तथा वह उनके शरीर का स्पर्श भी नहीं कर सका। इस कथन पर विश्वास न कर समाज के लोगों ने निर्णय लिया कि सतीत्व की परीक्षा ली जाय। इस परीक्षा के लिए हाथ में तप्त लौह-पिण्ड लेना पड़ता था। धर्माध्यक्ष पण्डित ने पीपल के पत्ते पर 'नाहं चाण्डाल गामिनी' लिखकर उस स्त्री के हाथ में तलहथी पर रख दिया। तत्पश्चात लोहे के गोले को तप्त कर पत्ते पर रखा गया। स्त्री का तलहथी जलने लगी जिससे पुनः लोगों ने उन्हे पापिन कहना शुरू किया। परन्तु वह स्त्री ने अपने ऊपर लगाए गलत आरोपों से छुटकारा पाने हेतु राज दरबार में फिर से गुहार लगायी। प्रधान धर्माधिकरणिक ने अपने समक्ष पुनः उस स्त्री के हाथ में पीपल के पत्ते रखकर तप्त लौह-पिण्ड रखने की व्यवस्था की, किन्तु इस बार 'नाहं स्वपति व्यतिरिक्त चाण्डल गामिनी' लिखा गया। इस बार नहीं जला। फलतः उन्हें निर्दोष साबित किया गया। वस्तुतः उनके पति हरिनाथ शर्मा को ही चाण्डालत्व प्राप्त हो गया था, क्योंकि उनका विवाह अनाधिकार में हो गया था।[8] इस निर्णय के पश्चात ही पंजी व्यवस्था को सुदृढ़ करने की आवश्यकता पड़ी। कुछ विद्वानों का मानना है कि पंजी व्यवस्था की शुरूआत वहीं से हुई, किन्तु ऐसा कहना सही नहीं होगा, क्योंकि **वाल्मीकीय रामायण**[9] से स्पष्ट संकेत मिलता है कि विवाह के समय में वर एवं वधू दोनों पक्षों के वंशावली का विवरण प्रस्तुत किया जाता था। कुमारिल भट के **तन्त्रवार्तिक** नामक प्रसिद्ध ग्रंथ से भी कुलीन परिवार में होने वाले वैवाहिक व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है।[10] अतः, यह कहा जा सकता हे कि मध्यकाल में इस प्रथा में कुछ विकृतियाँ आ गई थीं, जिसे सुदृढ़ करने की आवश्यकता हुई।

महामहोपाध्याय परमेश्वर झा के उक्त कथा का समय 1300 ई० के आस-पास माना गया है, जिस समय मिथिला पर कर्णाट वंशीय राजा हरिसिंहदेव का शासन स्थापित था। राजा ने पंजी

व्यवस्था में विशेष अभिरूचि ली थी। कहा जाता है कि उन्होंने मुक्तेश्वर स्थान में ही अपना दरबार लगाया था। इसीलिए इस व्यवस्था को हरिसिंहदेवी प्रथा भी कही गयी है। हरिसिंहदेव के मंत्री तथा प्रसिद्ध विद्वान चण्डेश्वर एवं उनकी विदुषी पत्नी लखिमा ने भी इस कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

स्थानीय लोगों में एक कथा और प्रचलित है कि परशुरामजी का आश्रम मुक्तेश्वर में स्थित था और उन्होंने यहाँ तपस्या की थी। मिथिला में धनुष-भंग करने के पश्चात राम ने यहीं से प्रस्थान किया था।

मुक्तेश्वर के वर्तमान मन्दिर निर्माण के सम्बन्ध में भी एक अनूठी कथा प्रचलित है। इसके अनुसार[11] लगभग दो सौ वर्ष पहले शतधारा गाँव में दहिहरे सहसराम मूल के ब्राह्मण अमर मिश्र एवं लोचन मिश्र दो भाई रहते थे। वे गाय भी पाला करते थे। मुक्तेश्वर स्थान में उस समय घना जंगल था, जहाँ उनके चरवाहे गायों को लेकर चराने को जाया करते थे। एक समय ऐसा आया कि एक बाछी घने जंगल में कुछ समय के लिए गायब हो गयी। जब प्रतिदिन ऐसा होने लगा तो चरवाहों ने इस पर ध्यान देकर पता लगाया, तो देखा कि एक पत्थर के टुकड़े पर बाछी के स्तन से दूध गिर रहा था। इस आश्चर्यजनक घटना की सूचना चरवाहों ने अपने मालिक को दी। मालिक ने भी जंगल में छुपकर इस दृश्य को देखा। खोदने पर वहाँ एक शिवलिंग निकला। तत्पश्चात वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसे अपने गाँव शतधारा ले जाकर स्थापित किया जाय। लेकिन रात में ही उन्हें स्वप्न हुआ कि शिवलिंग को उखाड़ने का प्रयास नहीं करें, बल्कि वहीं मन्दिर का निर्माण कराकर शिव आराधाना आरंभ की जाय। अतः, छोटे भाई लोचन मिश्र ने मंदिर का निर्माण कराया तथा बड़े भाई अमर मिश्र के द्वारा मंदिर के दक्षिण दिशा में तालाब खुदवाया गया। अमर मिश्र के वंशजों के कब्जे में अभी भी वह तालाब है। बाद में यहाँ अनेक मंदिरों तथा धर्मशालाओं के निर्माण कालक्रमेण होते रहे।

पुरातात्विक दृष्टि से भी मुक्तेश्वर स्थान एक महत्वपूर्ण स्थल है। यहाँ के पुरावशेष बड़े ही कलात्मक हैं। यहाँ का शिवलिंग भी अनोखा एवं प्राचीन है। इसका ऊपरी भाग चिपटा है तथा इसमें पाँच मुख हैं। मुख के नीचे यह क्रमशः मोटा होता गया है। कुछ दशक पूर्व एक संन्यासी ने यहाँ आकर उस शिवलिंग की खुदाई आरंभ की, तो वह क्रमशः इतना मोटा होता गया की उसका निकलना संभव नही लगा।[12] अतः स्थानीय लोगों ने खुदाई बंद करवाकर पुनः इस प्रकार से भरवा दिया कि अब शिवलिंग का केवल ऊपरी भाग अत्यंत ही लघु रूप में दिखाई दे रहा है। शिवलिंग के स्वरूप को देखकर ऐसा लगता है कि इसकी स्थापना संभवतः गुप्तकाल में हुई होगी। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के मथुरा स्तम्भलेख में, उपमितेश्वर और कपिलेश्वर नामक दो शिवलिंगों की स्थापना की बात की गई है[13] तथा मत्स्यपुराण[14] में भी शिवलिंग पूजा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस प्रकार गुप्त

काल में शिवलिंग की स्थापना एवं पूजा करने के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं तथा इस काल में पंचमुखी शिवलिंग स्थापना का भी प्रमाण मिलता है।

मुक्तेश्वर शिवलिंग के उत्खनन से एक बड़ी ही सुन्दर गणेश की मूर्ति मिली है, जिसे उत्तर गुप्तकाल का माना जा सकता है। गणेश की मूर्ति पूर्णतः सुरक्षित है तथा उसका उपयोग पूजा के लिए किया जा रहा है। मूर्ति में गणेश को आसन पर बैठे हुए दिखाया गया है। गणेश का घुटना उठा हुआ है तथा बायी जँघा गिरी हुई है। उनका सूढ़ दाहिनी ओर मुड़ा हुआ है। उनकी चार भुजाएँ हैं तथा कानों में कुण्डल हैं।

मंदिर के सामने एक तालाब है, जिसके उत्खनन के समय अनेक ही महत्वपूर्ण मूर्तियाँ मिली थी। ये सभी काले पत्थर की बनी हुई हैं। इनमें एक स्त्री की मूर्ति बड़ी ही अनोखी एवं कलात्मक है। स्थानीय लोग इस मूर्ति को पार्वती के रूप में पूजते हैं, किन्तु इसके चित्र को देखकर कला-विशेषज्ञों एवं पुरात्त्ववेत्ताओं ने अलग-अलग मत प्रकट किए हैं। संग्रहालय निदेशालय, बिहार, के पूर्व निदेशक डा० हरि किशोर प्रसाद इसे शालभंजिका की मूर्ति मानते हैं तथा उनका तर्क है कि इस मूर्ति को बनानेवाले मूर्तिकार ने दूसरी शताब्दी ई० पू० के शालभंजिका की मूर्ति का अनुकरण किया है, किन्तु इसमें वह पूर्ण सफल नहीं हुआ है। पुरातत्व विभाग, बिहार के अधिकारी डॉ० सत्येन्द्र कुमार झा भी इसे शालभंजिका ही मानते हैं। लेकिन अनेक विद्वानों ने इस मत को इस आधार पर मानने से इन्कार कर दिया है कि इसमें वृक्ष कहीं नहीं दीखता, जो शालभंजिका के लिए आवश्यक है। पुनः पटना संग्रहालय स्थित दूसरी शताब्दी ईसापूर्व की शालभंजिका बाएँ हाथ को ऊपर उठाकर पेड़ को पकड़ी हुई है और दाहिना हाथ दाहिनी जँघा पर है। बाएँ कँधो से एक चौड़ी पट्‌टी कमर तक आती है तथा कमर में लपेटी हुई है। लेकिन मुक्तेश्वर के उक्त मूर्ति का बायाँ हाथ नीचे लटक रहा है जिसमें कोई वस्तु है तथा दाहिना हाथ ऊपर सिर तक उठा हुआ है। इसमें बाएँ कंधो से एक कम चौड़ी पट्‌टी बायीं स्तन के ऊपर भाग को स्पर्श करती हुई पेट तथा कमर को पार करती है एवं बाई जाँघ तक जाती है तथा पुनः मुड़कर दाहिनी जाँघ में लिपट जाती है। इस तरह यह बिल्कुल ही अलग मूर्ति है। अतः इसे शालभंजिका कहना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। दूसरी ओर संग्रहालय निदेशालय, बिहार, के अधिकारी डा० उमेश चन्द्र द्विवेदी इस मूर्ति में महिला को लेटी हुई 'संद्योजात' बताते हैं, किन्तु मूर्ति के कलात्मक स्वरूप एवं शिशु की अनुपस्थिति के कारण इस मत को भी विशेषज्ञ स्वीकार नहीं करते हैं। पुनः कुछ विद्वान[15] इसे तारा तो कुछ[16] पार्वती का ब्रह्मचारिणी स्वरूप मानते हैं। किन्तु उत्तर प्रदेश पुरातत्व विभाग के पूर्व निदेशक डा० रामचन्द्र सिंह उपर्युक्त किसी भी गत से सहमत नहीं है तथा वे इस पर गहन शोध एवं अन्वेषण की आवश्यकता पर बल देते हैं। अस्तु, लगभग सभी विद्वान इसका समय नौवीं-दसवीं शताब्दी के मध्य रखते हैं तथा इसकी उत्कृष्ट मूर्तिकला की सराहना करते हैं जो बड़े ही दिव्य प्रतीत होते हैं। हाथ में

कंगन तथा बाजूबंद, कमर में कमरबंद, कानों में झुमके तथा पैरों में भी आभूषण दिखाई देते हैं। गले में हार है, जो दोनों स्तनों के मध्य तक लटकती है।

उक्त मूर्ति को देखने से लगता है कि महिला बाएँ पाँव पर खड़ी है तथा दाहिना पाँव उठायी हुई है। मूर्ति को एक द्वार पर खड़ा दिखाया गया है, जिसका दाहिना घुटना तथा दाहिने हाथ की केहुनी द्वार से स्पर्श कर रही है। ऐसा लगता है कि महिला को नृत्य की मुद्रा में दिखाया गया है अथवा एक पांव पर खड़ी होकर तपस्विनी का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। मुक्तेश्वर मंदिर परिसर में शिवलिंग, गणेश, नन्दी आदि की मूर्तियाँ मिली हैं। अतः इस आधार पर शिव परिवार का महत्वपूर्ण सदस्य पार्वती का होना स्वाभाविक सा प्रतीत होता है। और मूर्ति के स्वरूप से लगता है कि पार्वती शिव आराधाना के लिए एक पाँव पर खड़ी होकर लीन है।

उक्त मूर्ति के अतिरिक्त तालाब से एक भैरव एवं एक नंदी की भी मूर्तियाँ मिली हैं। ये दोनों भी काले पत्थर की हैं। भैरव बायें हाथ में लम्बा दण्ड लेकर खड़े हैं। यह दण्ड उनके बाएँ कंधो पर स्थित है। उनके पीछे उनका वाहन कुत्ता पूँछ को ऊपर की ओर उठाए खड़ा है। भैरव के गले में विशाल माला है, जो उनके जाँघों को स्पर्श कर रहा है। कानों में कुण्डल सुशोभित है। इस मूर्ति का समय भी नौवीं-दसवीं शताब्दी के मध्य रखा जा सकता है। नंदी की बैठी हुई मूर्ति बड़ी ही कलात्मक प्रतीत होती है। यहाँ काला पत्थर का एक आधार भी मिला है जिस पर अनेक मूर्तियों के पैर बने हुए हैं तथा पैर से ऊपर का भाग टूटा हुआ है, किन्तु टूटा हुआ भाग अभी मुक्तेश्वर में उपलब्ध नहीं है। मंदिर के बाहर अनेक मूर्तियों के भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं तथा काला पत्थर का ही एक पानी बहने वाला नाला भी रखा हुआ है, जिसका उपयोग तत्कालीन मंदिर से पानी की निकासी में किया जाता होगा। इस तरह पालकालीन मूर्तिकला का यहाँ महत्वपूर्ण संग्रह देखने को मिलता है। मूर्तियों के आभूषण भी तत्कालीन कला में उत्तम प्रमाण हैं।

उपर्युक्त कलाकृतियों के अतिरिक्त मुक्तेश्वर स्थान के इर्द-गिर्द अनेक टीले थे जिन्हें तोड़कर कुछ दशक पूर्व ही कृषि-क्षेत्र में बदल दिये गये। यहाँ मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े भी इधर-उधर बड़ी संख्या में बिखरे पड़े थे, किन्तु इधर करीब बीस वर्षों में वे सभी धीरे-धीरे नष्ट हो चुके हैं। परती जमीन को तोड़कर खेत में परिणत होना तथा प्रतिवर्ष बाढ़ की तेज धारा द्वारा उसे बहाकर ले जाना इसके मुख्य कारण हैं।

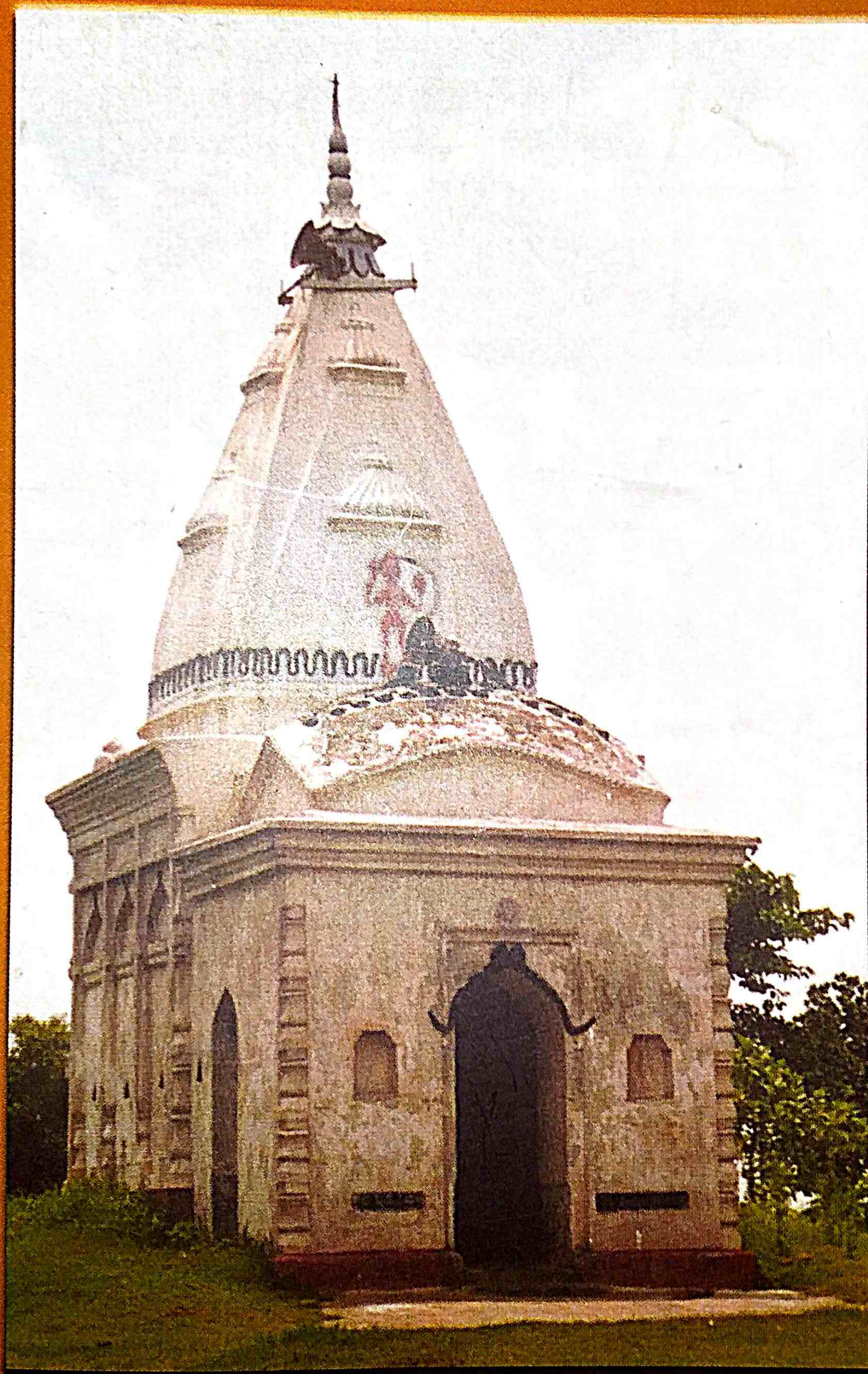
इस प्रकार प्राप्त पुरावशेषों से मुक्तेश्वर स्थान की उत्कृष्ट मूर्तिकला का प्रमाण मिलता है। साथ ही यह भी जानकारी मिलती है कि गुप्तकाल से लेकर कर्णाट काल तक यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण धार्मिक केन्द्र था। यही कारण था कि मिथिला की पंजी-प्रबन्ध जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक व्यवस्था से इस स्थल

को संबद्ध किया गया। ऐसा लगता है कि उत्तर मध्यकाल में किसी प्राकृतिक आपदा से यह धार्मिक स्थल नष्ट हो गया तथा वहाँ जंगल बन गया। परन्तु करीब दो सौ वर्ष पहले इस स्थल का जीर्णोद्धार कराया गया एवं वर्तमान मंदिर का निर्माण हुआ। इस मंदिर का स्वरूप तत्कालीन वास्तुकला का एक उत्तम नमूना है। मंदिर का निर्माण बड़े सादगी एवं मजबूती से किया गया है। इसमें पश्चिम से प्रवेश तथा दक्षिण से निकास द्वार हैं तथा मंदिर के अन्दर पर्याप्त स्थान भी है, जिससे समुचित प्रकाश का संचार होता रहता है। इस तरह मिथिला की कला एवं पुरातत्व के लिए यहाँ एक अमूल्य निधि व्याप्त है जिसपर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट होना परमावश्यक है। समुचित सरकारी व्यवस्था तथा स्थानीय लोगों में जानकारी के अभाव के कारण इस स्थल पर अनेक भवनों के निर्माण कार्य तथा कुआँ, तलाब आदि के उत्खनन कार्य होते रहे हैं, जिससे अनेक महत्त्वपूर्ण पुरावशेष नष्ट होते गए हैं। अतः कला और पुरातत्व के इस निधि को विनाश से अविलम्ब बचाना आवश्यक हो गया है।

संदर्भ

1. शिवकुमार मिश्र, 'बलिराजगढ़: प्राचीन मिथिला नगरी', **बिहार : स्थानीय इतिहास एवं परम्परा**, जानकी प्रकाशन, पटना, 1998, पृ० 241(रत्नेश्वर मिश्र, 'बलिराजगढ़ का पुरातात्विक संदर्भ (अंधा विश्वासों से आवृत,' **बिहार: स्थानीय इतिहास एवं परम्परा**, पटना 1997 पृ० 231.
2. शिव कुमार मिश्र, **एजुकेशनल आइडियाज एण्ड इन्स्टीच्यूशन्स इन एंश्येंट इण्डिया विद स्पेशल रेफेरेन्स टू मिथिला**, दिल्ली, 1996, पृ० 63.
3. राजेश्वर झा, **मिथिलाक्षरक उद्भव ओ विकास**, पटना 1961, पृ० 65 (**जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी**, पटना, IX, पृ० 302.
4. उपेन्द्र ठाकुर, **हिस्ट्री ऑफ मिथिला**, दरभंगा, द्वितीय संस्करण, 1988, पृ० 1994-95.
5. वही, पृ० 514.
6. परमेश्वर झा, **मिथिला तत्व विमर्श**, पटना, 1977, पृ० 83.
7. सुरेश चन्द्र बनर्जी, **कन्ट्रीब्यूशन ऑफ बिहार टू संस्कृत लिटरेचर**, पटना, 1963, पृ० 36, काशी प्रसाद जायसवाल (संपा.), ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ दि मेन स्क्रिप्ट्स ऑफ मिथिला, 446. एन्डी० पटना।
8. परमेश्वर झा, पूर्वोक्त, पृ० 83-84.
9. **रामायण**, 1, 70, 17-41; 71, 3-13.
10. रमानाथ झा, 'मैथिल ब्राह्मणक पंजी व्यवस्था', **मिथिला भारती**, पटना, अंक, 1, पृ० 8-9, अंक-2, पृ० 110.
11. पं० श्री महादेव मिश्र, शतधारा (मधुबनी) निवासी ने सूचित किया।
12. पं. श्री उमेश चन्द्र झा, शतधारा (मधुबनी) निवासी ने यह सूचना दी।
13. **इपीग्राफिका इण्डिका**, 19, पृ० 8.
14. **मत्स्यपुराण**, 188, 61.
15. प्रो० विजय कुमार ठाकुर, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय तथा जयदेव मिश्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, पटना विश्वविद्यालय का मत है कि यह तारा की मूर्ति है। मिथिला क्षेत्र में अनेक स्थानों पर तारा की मूर्तियाँ मिली हैं।
16. जगदीश्वर पाण्डेय, निदेशक, काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना के विचार।

Art and Archaeology of Mithila



Directorate of Archaeology

Dept. of Art, Culture and Youth, Bihar, Patna

Art and Archaeology of Mithila

Chief Editor

S.K. Sinha

Director, Archaeology, Bihar

Editors

Dr. Atul Kumar Verma

Dr. Kumar Anand

Dr. S.K. Jha

Directorate of Archaeology

Dept. of Art, Culture & Youth, Bihar

2006

Contents

Archaeology Section

Art Section